क्या इन्सुलिन के इंजेक्शन से कभी मुक्ति मिलेगी?

1921 में इन्सुलिन की खोज सचमुच एक चमत्कार था। इसके बाद मधुमेह के उपचार में इन्सुलिन के इंजेक्शन का प्रमुख स्थान रहा है। यह इंजेक्शन चमड़ी के नीचे लगाया जाता है। इसलिए इन 80 वर्षों में लगातार यह प्रयास चलता रहा है कि इन्सुलिन देने का कोई आसान तरीका मिल जाए। मगर मुंह से, जीभ से, त्वचा से, गुदा से, नाक से इन्सुलिन देने में कोई सफलता नहीं मिली है। फिर भी कोशिशें जारी हैं कि किसी तरह अवशोषण बढ़ाने वाले पदार्थों की मदद से, इन्सुलिन को अपचनीय कैप्सूल में बन्द करके या स्वयं इन्सुलिन के अणु में परिवर्तन करके इसे किसी आसान मार्ग से शरीर में पहुंचाया जा सके। फिलहाल फेफड़ों के ज़रिए इन्सुलिन-प्रवेश में कुछ सफलता मिली है। आइए देखें कि इस संदर्भ में किस तरह के प्रयास हुए हैं और हम कहां तक पहुंचे हैं। हाल ही में करन्ट साइन्स पत्रिका में डेविड ओवेन्स, जेरेमिया बोल्ली और बर्नार्ड ज़िम्मैन ने इस दिशा में किए जा रहे शोध की एक समीक्षा की है। प्रस्तुत है उसका सार...

1920 के दशक में इन्सुलिन उपचार शुरू होने के बाद से इसके उत्पादन, शोधन व फॉर्मुलेशन के क्षेत्र में काफी तरक्की हुई है और इससे मधुमेह रोगियों को काफी लाभ मिला है। मगर चमड़ी के नीचे इंजेक्शन के रूप में दिए जाने पर इन्सुलिन का असर काफी अलग-अलग होता है तथा इस पर कई बातों का प्रभाव पड़ता है। चूंकि मधुमेह के रोगी को लगातार प्रतिदिन कई बार यह इंजेक्शन लेना होता है इसलिए एक पेन इंजेक्टर का आविष्कार भी किया गया और कई अन्य उन्नत उपकरण भी बने। त्वचा के नीचे लगाए जा सकने वाले इन्सुलिन पम्प भी विकसित किए जा रहे हैं। कोशिश यह भी चल रही है कि ऐसे पम्प के साथ एक ऑटोमैटिक ग्लूकोज़ मापक भी जुड़ा हो ताकि खून में ग्लूकोज़ के स्तर के अनुसार इन्सुलिन छोड़ी जा सके।

साथ ही इस बात के प्रयास भी चल रहे हैं कि इंजेक्शन की अपेक्षा कोई आसान तरीका निकले। इस सम्बंध में शोध मूलतः जंतुओं पर हुए हैं और परिणाम निराशाजनक रहे हैं। पता चलता है कि किसी भी अन्य मार्ग से दिए जाने पर शरीर को वास्तव में उपलब्ध इन्सुलिन की मात्रा काफी कम रह जाती है, इसलिए समुचित असर पैदा करने के लिए बहुत ज़्यादा खुराक देनी पड़ती है और साथ में ऐसे पदार्थ मिलाने पड़ते हैं जिनकी मदद से शरीर इन्सुलिन का अधिक अवशोषण कर पाए। कुछ प्रयोग मनुष्यों पर भी हुए हैं और इनमें मुंह से, जीभ से, गुदा से, नाक से व फेफड़ों से इन्सुलिन देने के प्रयास किए गए हैं। इनमें भी सीमित सफलता ही मिली है।

मुंह से इन्सुलिन : मुंह से इन्सुलिन देने में प्रमुख समस्या यह है कि पाचन नली की दीवारें इसका अवशोषण नहीं करतीं। दूसरी समस्या यह है कि इन्सुलिन एक प्रोटीन है जिसे पेट के पाचक रस पचा डालते हैं। लिहाज़ा दोनों ही कोशिशें की गई हैं - कि इन्सुलिन में ऐसे परिवर्तन किए जाएं कि वह पाचक रसों के प्रभाव से बच सके और आंतों में उसका अवशोषण बेहतर हो सके। कोशिश यह रही है कि इन्सुलिन को ऐसे कैप्सूल में बन्द दिया जाए जिस पर आमाशय के पाचक रसों का असर न हो ताकि वह सुरक्षित आंतों में पहुंच जाए। दिक्कत यह भी है कि भोज्य पदार्थों के आमाशय में रुकने की अवधि व्यक्ति-व्यक्ति में बहुत अलग-अलग होती है। इसलिए कोई फार्मूला बनाना मुश्किल है। दूसरी दिक्कत यह है कि इस तरह से देने पर बहुत ज़्यादा खुराक देनी पड़ती है। **जीभ से अवशोषण** : एक तरीका यह है कि जीभ व मुंह की आंतरिक दीवार से इसका अवशोषण कराया जाए। यह आसान तो बहुत है लेकिन इसमें दो दिक्कतें हैं। पहली तो यह कि मुंह के अंदर अवशोषण में काफी मोटी दीवार पार करनी पड़ती है। दूसरी दिक्कत यह है कि मुंह में लगातार लार का प्रवाह होता रहता है। जंतुओं में किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि यदि इन्सुलिन के साथ अवशोषण-वर्धक पदार्थ मिलाए

जाएं और इसे दीवार से चिपकाने वाले पदार्थ भी मिलाए जाएं तो रक्त ग्लूकोज़ में 30 प्रतिशत तक की कमी आती है। मगर परिणाम एकरूप नहीं रहते। अभी प्रयोग जारी हैं।

गुदा से इन्सुलिन : देखा गया है कि यदि इन्सुलिन गुदा के माध्यम से दी जाए तो यह लसिका तंत्र से होती हुई आम रक्त प्रवाह में पहुंच जाती है। अवशोषित इन्सुलिन में से 70 प्रतिशत तक रक्त प्रवाह में पहुंचती है। मगर गुदा में से अवशोषण ही बहुत कम होता है। इंजेक्शन की अपेक्षा इस रास्ते दी गई इन्सुलिन का असर अधिक तेज़ी से होता है। अभी इस दिशा में काफी प्रयोग किए जाने हैं।

त्वचा से : यह सही है कि त्वचा से दवाई देना सबसे आसान है और मनुष्य की त्वचा का क्षेत्रफल भी काफी है; लगभग 1 वर्ग मीटर। इन्सुलिन त्वचा से सोखी जा सके, इसके लिए कई तरीके आज़माए गए हैं। मगर अभी तक इतना अवशोषण हासिल नहीं किया जा सका है कि शरीर की इन्सुलिन ज़रूरतों की पूर्ति हो सके।

यदि इसे कुछ विशिष्ट पदार्थों के साथ मिलाकर त्वचा पर लगाया जाए तो इन्सुलिन का अवशोषण काफी मात्रा में (50 प्रतिशत से ज़्यादा) हो जाता है। मनुष्यों में त्वचा पर 30 यूनिट इन्सुलिन लगाने पर प्लाज़्मा ग्लूकोज़ में 20 प्रतिशत की कमी 3-4 घण्टे में आ जाती है। इन शुरुआती सफलताओं के बावजूद आगे कोई तरक्की नहीं हुई है।

नाक से : हमारी नाक के अंदर की श्लेष्मा झिल्ली कई पदार्थों के अवशोषण के लिए एक अच्छी सतह (करीब 150 वर्ग से.मी.) है। मगर कई कारणों से इन्सुलिन का अवशोषण नहीं हो पाता है। वैसे पता यह चला है कि नाक से दी गई इन्सुलिन उतनी ही सक्रिय होती है जितनी सीधे खून में दी गई इन्सुलिन मगर सारे अवशोषण-वर्धक मिलाने के बाद शरीर में इसकी उपलब्धता 20 प्रतिशत से ज़्यादा नहीं हो पाती। एक दिक्कत यह भी है कि यह नाक की श्लेष्मा झिल्ली में उत्तेजना पैदा करती है और उसके सामान्य कामकाज में बाधा पहुंचाती है।

फेफड़ों का मार्ग : हमारे फेफड़े किसी भी दवा को शरीर में पहुंचाने के लिए सबसे विशाल सतह (करीब 140 वर्ग मीटर) उपलब्ध कराते हैं। नाक व पाचन नली की सतही झिल्ली यानी एपिथीलियम के मुकाबले फेफड़ों की एपिथीलियम बहुत महीन होती है (0.1-0.2 माइक्रोमीटर मोटी)। इसमें से चीज़ें आसानी से आर-पार हो सकती हैं और इसमें खून की सप्लाई भी बेहतरीन होती है। लिहाज़ा दवाइयां तथा प्रोटीनी हॉर्मोन देने के लिए यह एक आकर्षक विकल्प है।

फेफड़ों के माध्यम से इन्सुलिन देने के प्रारंभिक प्रयास 1920 के दशक में हुए थे। मगर सांस के साथ ली गई इन्सुलिन की व्यावहारिकता सिद्ध करने में 50 साल बीत गए। जल्द ही यह स्पष्ट हो गया कि फेफड़ों से इन्सुलिन का अवशोषण बहुत तेज़ी से होता है। चन्द प्रयोगों से यह भी पता चला कि यह इन्सुलिन रक्त-ग्लूकोज़ पर नियंत्रण भी करती है। हवा में बिखरे कणों यानी एयरोसॉल के रूप में दी गई 50-93 प्रतिशत इन्सुलिन लैरिंक्स नामक अंग में जमा हो जाती है। शरीर को इसकी 7-25 प्रतिशत तक मात्रा उपलब्ध हो पाती है। इसकी कितनी मात्रा कहां जमा होगी यह कई बातों पर निर्भर है। इस संदर्भ में कई अध्ययन किए गए हैं और किए जा रहे हैं।

अन्ततः फेफड़ों में इन्सुलिन पहुंचाने की कौन-सी विधि उपयोग की जाएगी, इसका फैसला शायद मरीज़ों की सुविधा के आधार पर होगा। इसमें खास तौर से बच्चों व बुजुर्गों का ख्याल रखना होगा। देखा गया है कि मधुमेह के जीर्ण मरीज़ों में से दो-तिहाई फेफड़ों की गड़बड़ियों से भी पीड़ित होते हैं। यह भी ध्यान देना होगा कि धूम्रपान करने वालों में फेफड़ों से इन्सुलिन का अवशोषण बहुत तेज़ होता है।

अभी तक इस विधि की कोई प्रतिकूल प्रतिक्रिया भी नज़र नहीं आई है। एक-दो साल तक इस तरीके का उपयोग करने के बाद भी किसी मरीज़ के फेफड़ों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं देखा गया है।

देखा गया है कि सांस के साथ ली गई इन्सुलिन का असर लगभग उतनी ही अवधि में शुरू हो जाता है जितनी अन्य विधियों में लगती है। इसके अलावा एक फायदा यह भी है कि इसका असर देर तक बना रहता है। बहरहाल, इसके उपयोग को लेकर अभी काफी अध्ययन व शोध की ज़रूरत है। ***(स्रोत फीचर्स)***